International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 694-695

प्रेमचंद के साहित्य में माता के रूप में नारी

संजय कुमार

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरयाणा, भारत।

प्रस्तावना

प्रेमचंद जी का मानना है कि नारी की पूर्ण सार्थकता उसके माता होने में हैं। उसकी जन्मगत प्रयोजनशीलता, साधना व तपस्या की प्राप्ति उसके मातृत्व के रूप में ही उसे प्राप्त होती है। माता के रूप में वह अपने नारीत्व को सार्थक कर पाती है। इसी मातृत्व को प्राप्त कने के लिए वह गर्भावस्था को भी मंगलमय व आनंदमय मान कर सहर्ष स्वीकारती है। वंशरक्षा के लिए नवीन सृष्टि की जन्मदात्री होने के आत्मगौरव से संतुष्टि प्राप्त करते हुए वह गर्भावस्था व प्रसवकाल की अत्यंत भयानक पीड़ा को भी वह अद्भुत धैय व साहस से सहन कर पाती है। प्रसवोपरांत नारी का एक प्रकार से पुनर्जन्म ही होता है। परंतु मातृत्व का सुख पाने के लिए नारी इसे भी खुशी–खुशी स्वीकार कर लेती है। संतान की प्राप्ति नारी के अहं को नष्ट कर उसे मातृत्व सुख की मृदुलता से भर देती है। जिस प्रकार पृथ्वी सारे कष्ट सहन करते हुए इस पर बसने वाली अपनी संतानों को हर प्रकार से सुख प्रदान करती है, ठीक उसी प्रकार माता जीवनपर्यंत अपनी संतान के सुख के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करती रहती है। अपनी संतान के लिए माता अपने सौंदर्य का त्याग बड़ी सहजता से कर देती है। प्रेमचंद जी कहते हैं कि नारी चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है। यहां तक कि एक समय ऐसा आता है कि जब नारी की दृष्टि में युवक मात्र पुत्र तुल्य हो जाते हैं। किंतु पुरूषों में यह अवस्था कभी नहीं आती। उनकी कर्मेन्द्रिया क्रियाहीन भले ही हो जाए पर विषय–वासना संभवतः और भी बलवती हो जाती है। प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में ऐसी माताओं को भी अंकन किया है जो हर अवस्था में पुत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित रखना चाहती है। भले ही विवाहित होने पर उसका दायित्व अपनी पत्नी को सुखी रखना भी क्यों न हो 'गृहनीति' कहानी में नायक की माता भी सामान्य माताओं जैसी पुत्रवत्सलता का परिचय देती है। इसलिए पुत्र के विवाह के पश्चात् भी वह उस पर अपना एकाधिकार स्थापित रखना चाहती है। वह पुत्र के प्रति अपने प्रेम में किसी अन्य को हिस्सेदार नहीं बना पाती भले ही वह उसकी पुत्रवधू ही क्यों न हो। चाहे पुत्र का दांपत्य जीवन कलह से ही क्यों न भर जाए परंतु माता पुत्र पर एकाधिकार जमाए रखती है। वह पुत्रवधू को पुत्र की दासी के रूप में रखना चाहती है। नायक की माता अपनी पुत्रवधू की पुत्र से झूठी शिकायत करती है। वह अपने पुत्र को उसकी पत्नी से विमुख कर देना चाहती है। शिक्षित व विवेकी पुत्र अपनी समझदारी से माता और पत्नी के बीच संतुलन बनाए रखता है अन्यथा माता के अत्यधिक वात्सल्य ने तो उसके जीवन को विषमय बनाने में कोई कसर न छोड़ी थी। अतः प्रेमचंद जी ने मातृत्व के आवश्यकता से अधिक हो जाने पर विवाहित पुत्र के नारकीय हो जाने की ओर भी अपने साहित्य में संकेत दिया है। उनका यह प्रयास अति सराहनीय है। ऐसा कभी–कभी ही होता है परंतु लेखक ने ऐसी माताओं को अत्यधिक पुत्र स्नेह से अनजाने में ही उसकी गृहस्थी के विषाक्त न करने हेतु चेताया है। प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में मातृत्व के प्रत्येक पहलू पर बारीकी से विश्लेषण करते हुए अपनी लेखनी चलाई है।

संसार की निर्मात्री माता ही होती है। प्रसव के दौरान माता ही अत्यंत कष्ट सहन कर संतान को इस धरती पर आने का सौभाग्य देती है। एक प्रकार से यह असहनीय कष्ट सहन कर वह स्वयं दूसरा जन्म ही लेती है। प्रेमचंद जी नारी का आदर्श रुप माता को ही मानते हैं। "नारी केवल माता है और इसके उपरांत वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विषय है।"[1]

प्रेमचंद जी ने नारी को क्षमा, दया, त्याग, अहिंसा आदि उच्चतम आदर्शों की अधिष्ठात्री होने के कारण पुरुष से श्रेष्ठ माना है। उनका विश्वास था कि शिक्षा, स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, समानता आदि विकास की सुविधाएं उपलब्ध होने पर वह पुरुष से अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होगी। "पुरुष में थोड़ी पशुता भी होती है जिसे वह इरादा करने पर भी हटा नहीं सकता। यह पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। वात्सलय, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर सृष्टि टिकी हुई है और ये स्त्रियों के गुण है।"[2] 'गोदान' में मेहता मानों उनके ही स्वर बोलते हुए कहता है– "मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषो के पद से श्रेष्ठ समझता हूं, उसी तरह जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा के हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूं।"[3]

'माँ' कहानी में आदित्य की पत्नी पुत्र को जन्म देती है। वह अनेक कष्टों को सहन करते हुए अपनी संतान का पालन–पोषण करती है। आदित्य से कहती है– "तुम्हारा जीवन देवताओं का–सा था। निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श। अगर तुम माया–मोह में फंसे होते, कदाचित मेरे मन को अधिक संतोष होता, लेकिन मेरी आत्मा को गर्व और उल्लास न होता जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े से बड़ा आर्शीर्वाद दे सकती हूं, तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।"[4]

मातृत्व नारीत्व की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। प्रेमचंद जी के अनुसार नारी की जन्मगत प्रयोजनशीलता, साधना और तपस्या भी उसके इसी रुप में होती है। "नारी चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है। यहां तक कि एक समय ऐसा आता है जब नारी की दृष्टि में युवकमात्र पुत्र तुल्य हो जाते हैं किन्तु पुरुषों में यह अवस्था कभी नहीं आती। उनकी कर्मेद्रियां क्रियाहीन भले हो जाए पर विषय–वासना संभवतः और भी बलवती हो जाती है।"[5]

अपने रक्त से पोषित संतान के लालन–पालन, सुरक्षा तथा प्रगति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाली तथा

विषम परिस्थितियों में भी हार न मानने वाली माताएं भी आदर्श माताएं होती है। ममता का पर्याय माँ है। वात्सलय का अक्षय स्रोत कभी नहीं चूकता। वह उसके लिए बड़े से बड़ा कष्ट भी सहन करती है। 'त्यागी का प्रेम' कहानी में आनंदी बाई अपने दुर्बल शिशु को विषम आर्थिक परिस्थितियों में भी पूरी तन्मयता से पालती है। पुत्री के पालन–पोषण में तो वह पुत्र से अधिक सतर्कता बरतती है। पुत्री को सर्वगुण–सम्पन्न बनाकर योग्य वर के साथ उसका विवाह करना चाहती है। 'आगा–पीछा' कहानी की कोकिला, "शांति" कहानी की गोपा तथा 'शूद्रा' कहानी की गंगा इसी प्रकार की माताएं है।

'शूद्रा' कहानी की गंगा अपने वैधव्य को भूलकर बेटी के साथ भाड़ झोंककर आजीविका चलाती है। मां सदा ही संतान के लिए अपना सर्वनाश करती आई है। यह उसके जीवन में बहुत बड़ा अभिशाप है। जो सदा बना रहेगा। "क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे है? मैं तो अपने प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर दूं, गहनों की विसात ही क्या है।"[6] 'बेटों वाली विधवा' में पुत्र जब अपने जेल जाने की मनगढ़त बात अपनी मां फूलमती से कहता है तो वह कहती है– "मेरे जीते जी तुम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है? उसका मुँह झुलस दूंगी। गहने इसी दिन के लिए है या किसी और दिन के लिए। जब तुम्ही न रहोगे तो गहने लेकर क्या आग में झोंकूगी?"[7]

'मृतकभोज' कहानी की सुशीला अपने ज्वरग्रस्त बालक के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है– "भगवान यही मेरे जन्म की कमाई है। अपना सर्वस्व खोकर मैं बालक को छाती से लगाए हुए संतुष्ट थी, लेकिन यह चोट न सही जाएगी। तुम इसे अच्छा कर दो, इसके बदले मुझे उठा लो।"[8] माता का हृदय' कहानी की माधवी धाय का कार्य करती है। वहां दूसरो के बच्चे के रुग्ण होने पर भी वह चित्कार उठती है। "माता सोती, पिता सो जाता, किंतु माधवी की आंखो में नींद न थी। खाना–पीना तक भूल गई। देवताओं की मनौतियां करती थी, बच्चे की बलाएँ लेती थी, बिल्कुल पागल हो गई थी।"[9]

प्रेमचंद जी ने नारी के मातृत्व रुप को ही उसकी चरमोपलब्धि माना है। यही सत्य है कि यही मां का मातृत्व है तभी यह सृष्टि है यही मातृत्व न हो तो सृष्टि नष्ट हो जाएगी।

संदर्भ

1. प्रेमचंद, गोदान, पृ0 167
2. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ0 222
3. प्रेमचंद, गोदान, पृ0 134
4. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग–1, पृ0 42–43
5. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग–4, पृ0 175
6. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग–1, पृ0 63
7. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग–1, पृ0 63
8. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग–4, पृ0 171
9. प्रेमचंद, मानसरोवर, भाग–3, पृ0 90